मुख्य न्यायाधीश के लिये

जजों की संख्या देखने के अलावा और भी बहुत कुछ है देखने को

दिल्ली (म.मो.) बीते पखवाड़े देश भर के मुख्य न्यायधीशों व मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन में मुकदमों के बोझ तले दबी जा रही न्यायपालिका की ओर से, भावुक होकर, सीजेआई (भारत के मुख्य न्यायाधीश) तीरथ सिंह ठाकुर ने इसके लिये जजों की कम संख्या को ज़िम्मेदार ठहराते हुए कहा कि यदि सरकार त्वरित न्याय जनता को दिलाना चाहती है तो अविलम्ब जजों की संख्या बढाई जाय। जजों के रिक्त पदों को तुरंत भरा जाय। प्रधानमंत्री मोदी की एक बात का जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि जज साहेबान छुट्टियों में मनाली घूमने नहीं जाते, वे छुट्टियों के दौरान घरों में बैठ कर फ़ैसले लिखते हैं।

जजों की कम संख्या का रोना रोने की बजाय यदि ठाकुर साहब सिस्टम की खामियों को दूर करने की बात करते तो ज़्यादा बेहतर होता। इस देश में अकेले जजों के ही पद रिक्त नहीं पड़े हैं, सभी सरकारी विभागों में पद रिक्त पड़े हैं। अकेले हरियाणा में 30 000 से अधिक पद शिक्षकों के खाली पड़े हैं। हज़ारों पद डॉक्टरों व पैरामेडिकल स्टाफ़ के खाली पड़े हैं। रोडवेज़ की बसों को चलाने के लिये ड्राइवरों व कंडक्टरों के तथा बसों की मुरम्मत करने वाले मिस्त्रियों के सैंकड़ों पद खाली पड़े हैं जिससे सरकार को भारी घाटा हो रहा है। लेकिन किसी को कोई चिन्ता नहीं।

रही बात अदालतों में काम के बढ़ते बोझ की, तो इसका संख्या से कोई ज़्यादा ताल्लुक नहीं है। ज़्यों-ज़्यों जजों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों-त्यों लम्बित मुकदमों की संख्या भी, उससे कहीं ज़्यादा अनुपात में बढ़ती जाती है। इसके लिये न्यायपालिका की कार्यशैली ही पूरी तरह से जिम्मेदार है। इसी कार्यशैली की बदौलत मुकदमेबाज़ी का रूझान बढ़ता जा रहा है। आपराधिक मुकदमों में तो एक पक्ष सरकार होती ही है, अन्य मुकदमों में भी आधे से अधिक में एक पक्ष सरकार होती है। दूसरे शब्दों में सरकार खुद एक बड़ी मुकदमेबाज़ है, जिसके चलाने वालों को मुकदमे की हार-जीत से कुछ लेना-देना नहीं होता। मुकदमेबाज़ी में उनके घर से तो कुछ लगना नहीं होता, इसलिये उनका काम तो केवल जनता को मुकदमेबाज़ी में धकेलना होता है

सर्वविदित है कि पुलिस द्वारा दायर किये जाने वाले आधे से अधिक मुकदमे झूठे और बे-बुनियाद होते हैं। अधिकांश ऐसे मुकदमे रिश्वतखोरी के चक्कर में और कुछ राजनीतिक दबाव एवं बदला लेने की नीयत से बनाये जाते हैं। इन्हीं कारणों से पुलिस के आधे से अधिक मुकदमे कोर्ट में पिट जाते हैं। मुकदमें भले ही पिट जायें पर इससे पुलिस की सेहत पर तो कोई असर नहीं पड़ता जबकि केस जीतने तक मुकदमा लड़ते-लड़ते अभियुक्त का बुरा हाल हो जाता है। ऐसा भी नहीं है कि कोर्ट को पुलिस का झूठ नज़र नहीं आता, उन्हें सब कुछ साफ़ नज़र आता है। इसके बावजूद मैजिस्ट्रेट पुलिस की झूठ कथा को सत्य कथा मान कर चलते हैं। इसी के चलते आज न्यायपालिका मानवाधिकारों का हनन करने वाला सबसे बड़ा संस्थान बन चुकी है।

जिन मुकदमों में तुरन्त जमानत हो जानी चाहिये, लेकिन होती नहीं। जिन मुकदमों में चार्ज लगाने की बजाय अभियुक्तों को डिस्चार्ज कर दिया जाना चाहिये, जजों की हिम्मत नहीं पड़ती डिस्चार्य करने की; कोई विरला जज ही डिस्चार्ज करने का साहस कर पाता है। कारण यह बताया जाता है कि जज पर कहीं रिश्वतखोरी का आरोप न लग जाये। बस इतनी ही साख बची है जजों की।

ठाकुर साहब को समझना चाहिये कि जो त्वरित् सस्ता एवं सुलभ न्याय पुलिस चौकी का एक हवलदार दे सकता है। वह भारत का मुख्य न्यायाधीश भी नहीं दे सकता और जो अन्याय उसने कर दिया उसकी भरपाई भी कोई अदालत नहीं कर सकती। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि उस हवलदार ने अपने इस अधिकार को बेच खाया है। केवल अपनी मर्जी से नहीं अपने अफ़सरों व राजनेताओं की जरूरतों को पूरा करने के लिये। इस सिस्टम को चलाने वाले शासक वर्ग को ऐसे ही दुष्ट एवं भ्रष्ट हवलदारों की जरूरत रहती है तथा भ्रष्ट न्यायपालिका उन्हें संरक्षण प्रदान करती है।

आपराधिक मामलों के अलावा अन्य मामलों में भी सरकार के अन्य विभाग मुकदमों का बोझ बढाने में पूरा बढ-चढ कर योगदान करते हैं। किसी भी दफ़्तर में कोई छोटा या बड़ा बाबू काम न कर के दे और परेशान व्यक्ति अदालत जाने की धमकी दे तो बाबू कहते हैं कि जल्दी कर, सामने बस खड़ी है सीधी कोर्ट तक जायेगी। यानी किसी को कोर्ट का कोई खौफ़ नहीं। खौफ़ हो भी क्यों? बरसों कोर्ट के धक्के खाकर व लाखों रुपया बर्बाद करके कोई जीत भी गया तो बाबू की सेहत पर क्या फ़र्क पड़ने वाला है? हां, यदि याचिकाकर्ता को राहत देने के साथ-साथ कोर्ट छोटे से लेकर बड़े बाबू तक को भी ज़िम्मेवार ठहरा कर टांगना शुरू कर दे तो तमाम बाबुओं को समझ आ जायेगी कि लोगों को कार्ट की ओर धकेलने का क्या नतीजा होता है। जिस दिन बाबूओं को यह समझ आ गयी उसी दिन से अदालतों से मुकदमों का ढेर स्वत: छंटने लगेगा।

रही बात छुट्टियों में मनाली घूमने की, तो हो सकता है ठाकुर साहब न जाते हों; परन्तु उन जजों की भी कमी नहीं है जो मनाली की बजाय यूरोप व अमेरिका आदि में ही छुट्टियां मनाना पसंद करते हैं। जहां तक फ़ैसले लिखवाने का सवाल है तो यह जज की योग्यता पर निर्भर करता है। कुछ जज ऐसे भी होते हैं जो खुली कोर्ट में बहस सुनने के तुरंत बाद वहीं बैठे-बैठे बीसियों पेज के फ़ैसले लिखवा देते हैं, जबकि कुछ ऐसे भी हैं जो महीनों तक नहीं लिखवा पाते। और तो और चार्ज लगाने तक के आर्डर सुनाने के लिये 10-15 तारीखें लगा देते हैं। कुछ जजों के बारे में तो यहां तक भी चर्चा चलती है कि उनके फ़ैसले कोई और ही लिखवाते हैं।

छोटे जजों की ईमानदारी के बारे में तो कुछ ना ही कहा जाय तो अच्छा होगा। इसके लिये तो भारत के मुख्य न्यायधीशों के उदाहरण-अल्तमश कबीर, बालाकृष्णन, सब्बरवाल अहमदी आदि ही काफ़ी हैं। हाई कोर्ट में निर्मल यादव का उदाहरण काफ़ी है। इसी हाई कोर्ट में जब एक बीके राय जैसा ईमानदार मुख्य न्यायधीश आ लगा तो व्यवस्था के लिये उन्हें झेलना भारी हो गया। जब उन्होंने जजों की नकेल कसनी चाही तो इतिहास में पहली बार, दो को छोड़ कर, तमाम जज हड़ताल पर चले गये थे। व्यवस्था को बीके राय की नहीं बल्कि अन्य जजों की जरूरत थी लिहाज़ा राय साहब को ही दर-बदर होना पड़ा। इस लिये ठाकुर साहब जजों की संख्या नहीं गुणवत्ता बढाने की जरूरत है तथा उस सिस्टम को बदलने की जरूरत है जिसमें बिना बात के मुकदमे खड़े किये जा रहे हैं। जबरदस्ती अनचाहे मुकदमों का बोझ बढाने वाली सरकारी मशीनरी के नट-बोल्ट कसने की जरूरत है।

स्मार्ट सिटी के नाम पर 2600 करोड़ जीमने को लालायित हैं निगम अधिकारी

फ़रीदाबाद (म.मो.) ड्रामेबाज़ प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जब से स्मार्ट सिटी का शिगूफ़ा छोड़ा है, स्थानीय नगर निगम के तमाम रिश्वतखोर एवं हरामखोर अफ़सरों के मुंह से टपकती लार छिपाये नहीं छिप रही है। यमुना एक्शन प्लान व जेएनयूआरएम (जवाहर लाल नेहरू अर्बन रिन्यूअल मिशन) का हज़ारों करोड़ डकारने, गुड़गाव नगर निगम से लिये सैंकड़ों करोड़ तथा अपनी निगम की जायदादें बेच खाने के बाद अब इन अफ़सरों की निगाहें 'स्मार्ट सिटी' के नाम पर मिल सकने वाले धन पर टिकी हैं। अपने तमाम काम छोड़कर आजकल ये लोग इस रकम को प्राप्त करने के लिये जी जान लगाये हुए हैं।

तरह-तरह के प्रपंच रच कर निगम ने इस बाबत 2600 करोड़ का प्रस्ताव भेजा है। यदि कहीं बिल्ली के भागों छीका टूट गया तो लार टपकाते भ्रष्ट अफ़सरों की पौ बारह हो जायेगी। कम से कम साल दो साल तक तो लूट का धंधा इस रकम से चल ही जायेगा। मिलने वाली संभावित रकम को किस तरह डकारना है, इसके लिये इन लाग़ों ने ख्याली पुलाव पका लिये हैं। इसमें दो तो पुल बनाने की योजना है। एक पैदल चलने वालों के लिये मैट्रो रेल के ओल्ड फ़रीदाबाद स्टेशन को रेलवे स्टेशन से जोड़ते हुए गांधी कॉलोनी के सामने रेलवे रोड पर उतारेगा। दूसरा नीलम चौक से अजरोंदा की ओर मथुरा रोड तक जाने वाले 4 लेन पुल के बगल में ऐसा ही एक ओर पुल बनाने की है।

अच्छी बात है, इस तरह के पुलों से जनता को काफ़ी राहत मिल सकती है। परन्तु जो राहत बिना कोई पैसा खर्च किये जनता को मिल सकती है उस पर ये चोर इफ़सर ध्यान क्यों नही देते? गांधी कॉलोनी के सामने वाली रेलवे रोड जहां से (ओल्ड फ़रीदाबाद) रेलवे स्टेशन की इन्ट्री होती है, 40 फ़ीट से घट कर मात्र 20 फ़ीट रह गयी है। उस पर हो चुके अवैध कब्ज़े क्यों नहीं हटाये जाते? इसी तरह जब नीलम चौक की तरफ़ से मथुरा रोड़ की तरफ़ पुल से उतरते हैं तो नर्सरी वाले ने जो गमलों आदि की अवैध दुकान खोल रखी है, उससे होने वाला जाम क्यों इन चोरों को नहीं दिखता? इसी तरह जब अजरोंदा की ओर से पुल पर चढ़ते हैं तो वहां ऑटो वालों का जमावड़ा तो रहता ही है, इसके अलावा पुल के बगल में जो अवैध निर्माण इन्हीं चोर अधिकारियों ने करवा रखे हैं, वह भी जाम का एक बड़ा कारण है। इन्हीं अवैध निर्माणों की वजह से चार बूंद पानी बरसते ही यहां जल भराव हो जाता है।

विदित है कि सन् 1948 में बनाया गया यह शहर बहुत ही खूबसूरत नियोजन का नमूना था। सारा काम योजनाबद्ध तरीके से किया गया था। शहर की तमाम अन्दरूनी सड़कों के साथ इतनी खाली जगह छोड़ी गयी थी कि आगामी सैंकड़ों साल तक भी सड़कों पर जाम न लगे परन्तु भ्रष्ट अफ़सरों व नेताओं ने मिल कर सड़क किनारों की तमाम जगह बेच खाई। सीवर एवं जलापूर्ति व्यवस्था पूरी तरह से सुदृढ बनाई गयी थी, परन्तु उसको इस कदर ओवरलोड करते चले गये कि उसका सत्यानाश हो गया। पूरे क्षेत्र में छोटे-बड़े सैंकड़ों तालाब थे जिनमें बरसात का पानी स्वत: पहुंचता था और सड़कों पर जलभराव नहीं होता था; परन्तु वे सब भी बेच खाये गये।

किसी से छिपा नहीं है कि नगर निगम के अधिकारी 10 रुपये के काम पर 100 रुपये का खर्च दिखाते हैं। इन से चाहे सड़क व पुल बनवा लो, ट्रयूबवैल लगवा लो, बिजली का खम्बा गड़वा लो, पार्क बनवा लो जो चाहे करवा लो काम का तो सत्यानाश करते ही हैं बजट भी पूरा ठिकाने लगा देते हैं। ये लोग ऐसा कोई काम नहीं कर सकते जिसमें बजट की जरूरत न हो। और तो और अवैध कब्ज़े हटाने का जो ये लोग नाटक समय-समय पर करते रहते हैं, उस पर भी काफ़ी खर्च दिखाया जाता है, जबकि सर्वविदित है कि अवैध कब्जे एवं निर्माण इनकी मिली भगत के बिना संभव ही नहीं।

इन हालात को देखते हुए निगम को 2600 करोड़ देने के बजाय निगम कर्मचारियों की रिश्वतखोरी व हरामखोरी पर लगाम लगाने की जरूरत है, शहर तो अपने आप स्मार्ट हो जायेगा।

मज़दूरों को चिकित्सा उपलब्ध नहीं, खेल तमाशों में जुटा ईएसआई निगम

फ़रीदाबाद (म.मो.) मज़दूरों को चिकित्सा सुविधा एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के नाम पर गठित ईएसआई निगम भले ही उन्हें पर्याप्त चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध न करा पाये परन्तु इसके अपने खेल-तमाशों में कोई कमी नहीं आती। इसी कड़ी में यहां निगम कर्मचारियों/अधिकारियों का चार दिनों तक चलने वाले खेल समारोह का आयोजन किया गया। दिनांक 29 अप्रैल को इसका भव्य समापन समारोह हुआ। इसके मुख्य अतिथि थे निगम के वरिष्ठ आईपीएस (विजिलेंस) अधिकारी। इसका रंगा-रंग उद्घाटन 25 अप्रैल को किया था निगम के डीजी दीपक कुमार ने। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने खेलों के महत्व पर पूरा बल देते हुए कहा कि निगम राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों को बढ़ावा देगा यानी उन्हें पालेगा। इसमें कोई दो राय नहीं कि खेल और खिलाड़ी महत्वपूर्ण होते हैं। परन्तु डीजी साहब को यह नहीं भूलना चाहिये कि मज़दूरों के वेतन से साढ़े 6 प्रतिशत काट कर खेल और खिलाड़ी पालने को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती। जिन मज़दूरों के वेतन से काट-काट कर आज निगम कोष में 40 हज़ार करोड़ जमा हैं, उन मज़दूरों को उपलब्ध सुविधाओं का भी यदि डीजी साहब दीदार कर लेते तो उनका मज़दूरों के प्रति कोई दर्द समझ में आता। लेकिन इस शहर में आने के बावजूद उन्होंने किसी भी अस्पताल या डिस्पेंसरी की शक्ल तक देखने की जरूरत नहीं समझी।

विदित है कि अस्पतालों, डिस्पेंसरियों के अलावा निगम के अपने तमाम दफ़्तरों में स्टाफ़ की भारी कमी है। जाहिर है इस कमी का दुष्प्रभाव मज़दूरों पर तो पड़ ही रहा है, खुद निगम के स्टाफ़ पर भी सदैव भारी दबाव बना रहता है। यह सब तब हो रहा है जब स्टाफ़ भर्ती पर सरकार अथवा निगम के घर से कुछ नहीं जाने वाला, सारा पैसा मज़दूर ने अग्रिम दे रखा है और देता जा रहा है। स्टाफ़ की इस कमी के चलते जहां मज़दूरों के काम पहले से ही रूके पड़े थे, इस खेल तमाशे की वजह से और भी बाधित हो गये। करीब 3-4 सप्ताह पहले से तमाम आवश्यक काम छोड़कर सारा निगम स्टाफ़ इस खेले तमाशे के सफ़ल आयोजन में जुटा रहा।

एस एम सी (स्टेट मेडिकल कमिश्नर) के कार्यालय में जहां पहले से ही मज़दूरों के बिल आदि बड़ी संख्या में रूके पड़े रहते है, वहीं इन दिनों में अन्य कई महत्वपूर्ण फ़ाइलें इस खेल तमाशे के नीचे दब गयीं। निगम के अपने अस्पतालों में तो कुछ खास इलाज होता नहीं, इसलिये निजी अस्पतालों का पैनल बनाया जाता है। इससे सम्बन्धित फ़ाइल गत 2-3 सप्ताह से एसएमसी कार्यालय में केवल इसलिये दबी पड़ी रही क्योंकि एस एम सी डॉक्टर जुल्का को खेलों के काम से ही फुर्सत नहीं थी, जो पैनल की फ़ाइल को आगे बढ़ा पाते। इसकी वजह से जो मज़दूर इलाज बिना तड़पते हैं तो तड़पते रहें, उनकी सेहत पर क्या फ़र्क पड़ता है।

एन एच-3 अस्पताल के एम.एस (मेडिकल सुप्रिंटेंडेंट) की तो इन 4-5 दिनों में मौज ही लग गयी। इन दिनों में इन्होंने खेलों की ड्रेस पहन कर खूब मस्ती काटी। सुबह सवा नौ बजे अस्पताल से निकल कर शाम को चार बजे के बाद ही अस्पताल में घुसना। विदित है कि किसी भी अस्पताल में एमएस की पोस्ट अति महत्वपूर्ण होती है, और उसका इस तरह नदारद रहने का अर्थ आसानी से समझा जा सकता है। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि वे जब अस्पताल में होते हैं तब ही कौन सा पहाड़ तोड़ते हैं।

ईएसआई निगम के अफ़सरों की काहिली एवं हरामखोरी का ताजातरीन नमूना है एमसीआई (मेडिकल काऊंसिल ऑफ़ इंडिया) की रिपोर्ट। इस माह किये गये निरीक्षण में एमसीआई ने एनएच-3 के अस्पताल में पाई खामियों के लिये निगम अधिकारियों को तलब करके 2 माह में तमाम खामियों को पूरा करने का वचन लिया है। विदित है कि गत 3 वर्षों से निगम के ये नालायक अधिकारी एमसीआई द्वारा अनेकों बार चेतावनी देने के बावजूद न तो आवश्यक स्टाफ़ की भर्ती कर सके हैं और न ही उपकरणों एवं साजो-सामान की खरीदारी। जाहिर है इनकी रूचि मज़दूरों को पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध कराने की बजाय अपने खेल-तमाशों व ऐय्याशियों में ही अधिक रहती है।